गिरिराज किषोर एवं उनकी कहानियाँ : एक परिचय

कृष्णानंद कुमार
शोध– छात्र, स्नात्तकोत्तर हिन्दी
ति0 मा0, भागलपुर विष्वविद्यालय, भागलपुर

प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार गिरिराज किषोर का जन्म 8 जुलाई, 1937 ई0 को उत्तर प्रदेष में मुजफ्फरनगर के एक जमींदार परिवार में हुआ था। फलतः उनका परिवार उस समय के हिसाब से अंग्रेजी शासन एवं अंग्रेजियत का अनुगामी और हामी था। इस कारण, परिवार में सामंती आचरण के साथ–साथ अंगेजी तौर–तरीके रूढ़ हो चुके थे। फिर भी, उनका परिवार सनातनी हिन्दू परिवार ही था। उनके दादाजी, श्री हरिषंकर लाल, मुजफ्फरनगर के प्रमुख सामंतों में एक थे और अपने धर्म के प्रति अति संवेदनषील। रूढ़ि, परम्परा एव ंअंधविष्वासों का पालन परिवार द्वारा होता है। पर्दा प्रथा का प्रचलन के अनुसार अनुपालन किया जाता था। हालत कुछ इस प्रकार था कि जब कभी महिलाओं को बाहर जाना होता था, तब घोड़ा–गाड़ी या फिटिन ड्योढ़ी पर लग जाती थी और परिवार की महिलाएँ गाड़ी में आ बैठती थीं। पर्दे डाल दिए जाते थे और गाड़ी उन महिलाओं को हवाखोरी करा लाती थी। इस तरह पर्दादारी में 'भला क्या हवाखोरी होती होगी?'[1]

श्री हरिषंकर लाल गजब के गुस्सेबाज और आत्मसम्मानी थे। वह समय ऐसा था जब काँग्रेस पूर्ण रूप श्से आजादी के संग्राम में संघर्षरत थी। तजी से सारी स्थितियों में परिवर्तन आ रहा था। लेकिन इस सामंती परिवार की अपनी कुछ मान्यताएँ और धारणाएँ थीं। उनके अपने हठ एवं लहरें भी। अपने अहंकार, विष्वास और रूतबे को बनाए रखने की कोषिषें भी उतनी ही अधिक प्रबल थी। और इन्हीं कारणों से वे बदलते समय एवं हालात के साथ समायोजन नहीं कर पाए। एक ठसकदास सामंत होने के बावजूद श्री हरिषंकर लाल की संगीत में खासी रूचि थी। वे सितार अच्छा बजाया करते थे।

गिरिराज किषोर की माँ का नाम श्रीमती तारावती थी। वे बहुत अच्छा गाती थी। किन्तु एक दकियानुस सामंती परिवार में ब्याहे जाने के कारण चारदिवारी में उनके गाने की कोई सार्थकता नहीं हुई। बाल्यावस्था में ही जबकि गिरिराज किषोर डेढ़ साल के थे उनकी माता का देहावसान हो गया। पिता श्री सूरज प्रकाष ने दूसरे ब्याह कर लिया। किन्तु विमाता श्रीमती रामदुलारी से बालक गिरिराज किषोर को अपनी माँ का–सा स्नेह नहीं मिला। माँ के मरने के बाद, माँ के आँचल की छाया न होने की वजह से एक तरह का बेगानापन उनकी जिन्दगी में शुरू से ही रहा। उनके दादाजी इस बेगानेपन को दूर करने का प्रयास करते रहे। वे हमेषा गिरिराज किषोर को अपने साथ ही रखा करते थे। 'गिरिराज किषोर के व्यक्तित्व पर उनके दादाजी का गहरा प्रभाव रहा है। उन्होंने दादाजी का गुस्सा छोड़ दिया लेकिन गंभीरता तथा चीजों की बारीकी में जाने की प्रवृत्ति दादाजी से ही सीखी।''[2]

गिरिराज किषोर को कला एक तरह से विरासत में मिली। उनके दादाजी एवं उनकी माँ को संगीतकला से लगाव था। परिवार में जमाने के हिसाब से फारसी, उर्दू और अंग्रेजी का चलन था। उनके दादाजी अंग्रेजी, फारसी और अरबी के विद्वान थे। हिन्दी को 'काँग्रेसी भाषा' कहकर हिकारत भरी दृष्टि से देखा जाता था। गिरिराज किषोर के पिता श्री सूरज प्रकाष की षिक्षा भी इन्हीं भाषाओं में हुई थी। न जाने क्यों गिरिराज किषोर ने अँग्रेजी या फारसी की बजाय पहली कक्षा से ही हिन्दी को चुना। जबकि, घरवालों की इच्छा थी कि वे अंग्रेजी या फारसी लें। उनकी स्नातक स्तर तक की पढ़ाई मुजफ्फरनगर में ही हुई। सामाजिक विज्ञान संस्थान, आगरा विष्वविद्यालय, आगरा से 1960 ई. में उन्होंने मास्टर ऑफ सोषल वर्क (एम.एम. डब्ल्यू) की स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की।

हाईस्कूल से ही गिरिराज किषोर की रूचि उपन्यास कहानी पढ़ने की ओर हो गई थी। घरवालों से छिप–छिपकर पढ़ते रहते थे। फलतः अपनी कक्षा में वे कभी अच्छे विद्यार्थी नहीं रहे।

जमींदारी उन्मूलन के परिणामस्वरूप गिरिराज किषोर के परिवार को घोर आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा। सन् 1960 ई. में सोषल वर्क में स्नातकोत्तर उपाधि लेने के बाद वे एक फैक्ट्री में लेबर आफिसर हो गए। यह नौकरी छूट गई। उसके बाद उत्तर प्रदेष के श्रम एवं प्रषिक्षण निदेषालय में सहायक सेवा नियोजन अधिकारी के रूप में सन् 1960 से 1962 ई. तक कार्य किया। किन्तु प्रतिकुल परिस्थितियों के कारण त्याग–पत्र देना पड़ा। उत्तर प्रदेष शासन के हरिजन एवं परिवार कल्याण निदेषालय में प्रोबेषन अधिकारी के पद तक कार्य किया। यह नौकरी भी हाथ से गई। इसके बाद सितम्बर 1964 से जुलाई 1966 के बीच लेखक के रूप में इलाहाबाद में रहकर स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य किया।

जुलाई 1966 ई. में उनकी नियुक्ति सहायक कुलसचिव के पद पर कानपुर विष्वद्यिालय, कानपुर में हुई। बाद में वे उप–कुलपति के पद पर नियुक्त हुए। कानपुर विष्वविद्यालय में 1966 से 1975 ई. तक रहे। फिर दिसम्बर 1975 में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में कुल सचिव पद पर उनका स्थानांतरण हो गया। लगभग चार वर्ष तो सबकुछ ठीकठाक रहा। उसके बाद तानाषाह निदेषक ने निलंबन कर दिया। उन दिनों उन्हें घोर अपमान और दमन का षिकार होना पड़ा। कभी दिल्ली दौड़ना पड़ता था, तो कभी इलाहाबाद उच्च न्यायालय। गलत निलम्बन के विरोध में उन्होंने अपना निलम्बन भत्ता तब अस्वीकार कर दिया था। अर्थिक समस्याएँ विकट थीं।

पर, सच्चाई उनके साथ खड़ी थी। उच्च न्यायालय से मुकदमा जीतने के बाद 31 मई 1980 को पुनः उसी पद पर ससम्मान सुभासीन हुए। ''सच्चाई में ठोकरें भी खानी पड़ती है और आदमी गिर–गिर कर उठने के अवसरों का धनी भी होता है।''[3] नवम्बर 1983 ई. में उन्हें प्रोन्नति देकर आई.आई.टी. कानपुर के रचनात्मक लेखन एवं प्रकाषन केन्द्र का अध्यक्ष बनाया गया। 31 जुलाई, 1997 ई. में सेवा–निवृत्ति के पष्चात् स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य कर रहे हैं तथा एमेरिटस फेलो के रूप में संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार से सम्बद्ध रहे हैं। सम्प्रति, कानपुर से 'अकार' पत्रिका का प्रकाषन एवं सम्पादन कर रहे हैं।

शरद बाबू, प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, जैनेन्द्र और यषपाल आदि को पढ़ते–पढ़ते गिरिराज किषोर की भी इच्छा लेखक बनने की हुई। फलतः छठी कक्षा से ही उन्होंने लड़खड़ाते हुए लिखना शुरू कर दिया। 'सच पूछिये तो उस समय लेखक बनना जरूरत से ज्यादा एक रोमांटिक रूझान था।''[4]

उनका मातृविहीन होना भी उनके लेखन के महत्त्वपूर्ण कारणों में एक रहा है। स्वयं गिरिराज किषोर के शब्दों में–''मैं मनोविज्ञान तो अधिक नहीं जानता। परन्तु हजारों ऐसे हैं जो मातृविहीन हैं पर लेखक नहीं। इतना जरूर लगता है कि कभी–कभी जिन्दगी की कोई बहुत बड़ी कमी, जो बाह्य तौर पर उतनी महसूस नहीं होती, पर इंसान की इस तरह की मंजिलों की तरफ ले जाती है।''[5]

गिरिराज किषोर के लेखन के मूल में तीन प्रमुख कारण हैं–

1. बाल्यावस्था में मातृवियोग, 2. लेखकों की संगीतिपूर्ण उपेक्षा और 3. आस्था।

1964–66 के बीच गिरिराज किषोर 'इलाहाबाद–प्रवास' में रहकर साहित्य–रचना कर रहे थे। उन दिनों इलाहाबाद में साहित्य की त्रिवेणी थे–सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा और सुमित्रानंदन पंत। फिराक साहब डेल्टा की तरह थे। गिरिराज किषोर से पहली पीढ़ी के और समकालीन पीढ़ी के अनेक लेखक व कवि उन दिनों इलाहाबाद में षिद्दत के साथ लिख रहे थे। गिरिराज किषोर के दो उपन्यास 'लोग' और 'चिड़ियाघर' तथा दो कहानी–संग्रह इलाहाबाद में रहते हुए ही छप चुके थे। शाम को कॉफी हाउस में लगभग सभी लेखक इकट्ठा होते थे। खूब साहित्य–चर्चा और टाँग खिंचाई होती थी। गिरिराज किषोर जैसे नए लेखक नोटिस लिए जाने की परिधि के बाहर थे। 'इलाहाबाद किसी का जल्द नोटिस नहीं लेता।''[6] स्वयं लेखक गिरिराज किषोर इलाहाबाद की एक उपेक्षा को रचनात्मक उपेक्षा की संज्ञा देते हैं। उपेक्षा लेखक के विकास का एक सषक्त उपकरण है। उपेक्षा लेखक को जितना बनाती है, वाहवाही उतना नहीं बनाती। अस्वीकृति लेखकीय कर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। अस्वीकृति को वहन कर सकना ही लेखक को लेखक बनाता है।

गिरिराज किषोर के लेखन में उनकी आस्था की भी भूमिका है। अनुभवगत सत्य है कि कितना भी गहरा अंधकार क्यों न हो, आस्था आलोकमयी होती है। उसी आस्था ने उन्हें लेखन से भी जोड़ा। 'कोई भी लेखक बहुत दूर तक समझौते नहीं कर पाता। ऐसे में उसकी आस्था ही कम आती है।''[7]

गिरिराज किषोर अपने लिखने की प्रेरणा अपनी फुफेरी बड़ी बहन डॉ. सत्या गुप्ता को मानते हैं।

गिरिराज किषोर ने छठी कक्षा से लिखना आंरभ किया और अब तक अनवरत लिखते आ रहे हैं। 'छठी कलास से लिखना और अब तक लिखते चला जाना अपनी ही एक ऐसी खोज का सिलसिला है जिसका ताजिंदगी रूकना मुष्किल है।''[8]

गिरिराज किषोर की पहली कहानी सन् 1959 ई. में आगरा से प्रकाषित होने वाले साप्ताहिक समाचार पत्र 'सैनिक' में छपी थी। सन् 1960 में उनकी रचना 'दैनिक हिन्दुस्तान' के रविवारीय परिषिष्ट में

प्रकाषित हुई। उसके बाद 'मध्य प्रदेष संदेष', 'कादम्बिनी', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में उनकी रचनाएँ प्रकाषित हुईं और उनकी विधिवत् साहित्य–यात्रा प्रारंभ हो गई।

गिरिराज किषोर सुबह नियमित रूप से लिखते हैं। उनमें गजब की एकाग्रता है। मिलने के लिए आए हुओं से वे पूरी आत्मीयता से बात करते हैं। वार्तालाप के दौरान भी उनकी रचानात्मक प्रक्रिया सजग और सक्रिय रहती है। भेंटकर्ता जब चले जाते हैं वे फिर लिखने लग जाते हैं। कहीं कोई टूटन नहीं, विश्रृंखलता नहीं, कोई षिकायत नहीं, परहेज भी नहीं।

गिरिराज किषोर का व्यक्तित्व सामंती परिवार के होने के बावजूद सामंती अहंकार से अछूता है। वे मात्र इंसान और इंसानी सरोकरों को ही महत्व देते हैं। वे जितने रिजर्व प्रकृति के हैं, उतने ही मिलनसार भी। किसी प्रकार की दकियानुसी का संस्पर्ष नहीं। किसी प्रकार का आभिजात्य संस्कार उन्हें छूने तक नहीं पायी। सदैव प्रदर्षन की प्रवृत्ति से दूर रहने वाले गिरिराज किषोर ने हर तरह के अतिवाद से स्वयं को बचाया है तथा किसी भी दल–विषेष से अलग रखा है।

गिरिराज किषोर मूलतः गद्य लेखक हैं। उपन्यासकार के रूप में ये विख्यात हैं। फिर इनके कहानीकार का स्थान आता है। नाटककार एवं एकांकीकार के रूप में भी वे अपना स्थान बना चुके हैं। इसके अतिरिक्त वे एक सषक्त निबंधकार, समर्थ आलोचक, कुषल सम्पादक तथा गंभीर विचारक भी हैं। इनकी कई कहानियों का अनुवाद बंगला, जर्मन तथा अंग्रेजी में हो चुका है। गाँधी जी पर 'पहला गिरमिटिया' शीर्षक उपन्यास लिखने की दृष्टि से अप्रैल, 1995 ई. में इन्होंने दक्षिण अफ्रीका, मारीषस तथा ब्रिटेन की यात्रा की। इसके अतिरिक्त जर्मनी, डेनमार्क, त्रिनिदाद एवं अमेरिका की भी सारस्वत यात्रा कर आए हैं। 10 अक्टूबर 2004 से 23 अक्टूबर 2004 तक चीन की यात्रा पर रहे।

गिरिराज किषोर की पहली प्राथमिकता उनका लेखन है, फिर परिवार है और बाद में नौकरी। यदि उन्होंने साहित्य को कुछ दिया तो साहित्य ने भी उन्हें कुछ कम नहीं दिया। साहित्य ने गिरिराज किषोर को जीने और दमन के खिलाफ संघर्ष करने का साहस दिया। यदि वे साहित्यकार न हुए होते तो एक घृणित कोटि के सामंत हो गए होते, राजनीतिज्ञ या नौकरषाह हो गए होते। तब उन्हें साहित्य के माध्यम से समाज या इंसान के अंदर झांकने की लेखकीय दृष्टि उपलब्ध नहीं होती। वस्तुतः ''अपने समय की सही पहचान करानेवाले कथाकारों में गिरिराज किषोर का एक विषिष्ट स्थान है।'' दूसरे शब्दों में, 'गिरिराज किषोर ही ऐसा लेखक हैं जिसने अपने समय और अनुभव–सीमाओं को विस्तार देने की कोषिष की है।''[10] गिरिराज किषोर उन लेखकों की पंक्ति में बदस्तूर कायम हैं जिन्होंने आधुनिकता के नाम पर सभी परम्पराओं का निषेध कर वर्जनाओं को स्वर दिया है।''[11]

उत्तर प्रदेष हिन्दी संस्थान द्वारा इन्हें नाटक पर भारतेन्दु पुरस्कार, मध्य प्रदेष साहित्य परिषद द्वारा 'परिषिष्ट' शीर्षक उपन्यास पर वीरसिंह देव पुरस्कार, उत्तर प्रदेष हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा वासुदेव सिंह 'स्वर्ण पदक, उपन्यास 'ढाई घर' के लिए वर्ष 1992 ई. का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। आप उत्तर प्रदेष हिन्दी संस्थान द्वारा साहित्य–भूषण अलंकरण से अलंकृत हैं। 'पहला गिरमिटिया' शीर्षक

उपन्यास के लिए वर्ष 2000 ई. में 'व्यास सम्मान' से सम्मानित हैं, तथा कैम्ब्रिज इंग्लैंड द्वारा 'इंटरनेषनल ऑर्डर ऑफ मेरिट गोल्ड' प्राप्त हुआ है। 23 मार्च 2007 ई. में साहित्य और षिक्षा के लिए'पद्मश्री' से विभूषित किए गए। साहित्य–अकादमी, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य भी रहे हैं।

गिरिराज किषोर का रचना संसार निम्नवत है–

(अ) उपन्यास : लोग, चिड़ियाघर, यात्राएँ, जुगलबंदी, इन्द्र सुनें, दावेदार, दो, तीसरी सत्ता, यथा प्रस्तावित, परिषिष्ट, असलाह, अन्तर्ध्वंस, ढाई घर, यातनाघर, पहला गरिमिटिया, इक आग का दरिया, स्वर्णमृग तथा बा।

(ब) कहानी–संग्रह : नीम के फूल, चार मोती बेआब, पेपरवेट, रिष्ता और अन्य कहानियाँ, शर–दर–षहर, हम प्यार कर लें, जगत्तारनी और कहानियाँ, गाना बड़े गुलाम अली खाँ का, वल्दरोजी, यह देह किसकी है, आन्द्रे की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ, हमारे मालिक सबके मालिक, सम्पूर्ण कहानियाँ–5 खण्ड, मेरी राजनीतिक कहानियाँ, वे नहीं आए, दुष्मन और दुष्मन, लहू पुकारेगा (संपादित)।

(इ) एकांकी–संग्रह : बादषाह–गुलाम–बेगम, हम रोषनी बत्ती।

(ई) नाटक–साहित्य : नरमेध, घास और घोड़ा, प्रजा ही रहने दो, जुर्म आयद, चेहरे–चेहरे किसके चेहरे, केवल मेरा नाम लो, काठ की तोप और गाँधी को फाँसी दो।

(उ) बाल नाटक : मोहन का दुःख।

(ऊ) निबंध–संग्रह : कथ–अकथ, लिखने का तर्क, सरोकार, लोहिया के सौ वर्ष, एक जनभाषा की त्रासदी, हिंदी स्वराज, फिलहाल : गाँधी का शब्दावतार, देखो जग बौराना, सप्तपर्णी, जन–जन सम सत्ता, दलित, विमर्ष : सन्दर्भ गाँधी।

(ऊ) आलोचना : संवाद–सेतु।

गिरिराज किषोर के आलोचनात्क विचार इनकी रचनाओं की भूमिकाओं एवं उनके द्वारा दिए गए साक्षात्कारों में यत्र–तत्र बिखड़े पड़े हैं तथा समय–समय पद विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाषित भी होते रहते हैं। उनकी रचनाओं पर रचनात्मक गुणवत्ता के दबाव को छोड़कर कोई अन्य दबाव विषेषकर आर्थिक, राजनीतिक, प्रचार आदि परिलक्षित नहीं होता। वस्तुतः ''साहित्य एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ न पद की पूजा होती है, न धन की, न ताकत की, न प्रचार की,–बस, रचनात्मक गुणवत्ता की ही पूछ है।''[12]

गिरिराज किषोर का रचनाकाल सुविस्तृत तथा इसके विषय विविधताओं से भरे–पूरे हैं। ''कथा साहित्य में अनुभव और अनुभूति की प्रामाणिकता के लिए गिरिराज किषोर प्रसिद्ध रहे हैं। अतीत और वर्तमान को एक–दूसरे के संदर्भ और परिप्रेक्ष्य या साँचे में देखने–समझने की कला गिरिराज किषोर के पास है।''[13] साहित्य इसके लिए मात्र मनोरंजन की वस्तु नहीं। ये केवल समस्या का भाव–चित्र ही प्रस्तुत नहीं करते प्रत्युत उसका बौद्धिक समाधान भी प्रदान करते हैं। रचनाओं में उनके द्वारा अनुस्युत विचारों में बल है तथा उनका दृष्टिकोण भी स्वस्थ है। वे कथा–माध्यम से ही वस्तु को उठाते हैं।

सातवें दषक के आस–पास लिखना शुरू करने वाले समकालीन कथाकारों में गिरिराज किषोर ही एक ऐसे रचनाकार हैं जो अपने मार्ग से विचिलत हुए बिना अबतक लिखते आ रहे हैं। न केवल परिणमा बल्कि परिणाम की दृष्टि से भी उनका लेखन संतोषप्रद से बढ़कर उत्साह–वर्द्धक माना जा सकता है। वे आदर्ष से अनुकरणीय होते रहे हैं। लेकिन, इसके लिए उन्होंने कभी प्रचार–तंत्र का सहारा नहीं लिया। ''नारों और घोषणाओं के इस दौर में भी वह जीवन के माध्यम से ही जीवन की पहचान कराने की कोषिष करते रहे हैं और बहुत कुछ यही कारण है कि सार्थकता और उपब्धियों की दृष्टि से वह अपनी पीढ़ी में सबसे आगे हैं।''[14] वस्तुतः गिरिराज किषोर उन विषिष्ट कथाकारों में हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं को जिन्दगी के अनुभवों से जोड़ने की चुनौती स्वीकार की है और उन्हें गहरे यथार्थ से जोड़ा है। उनमें उतनी ही विविधता है जितनी जीवन में होती है।''[15] कारण, कहानियों, उनन्यासों के साथ जीवन की विविधता भी जुड़ी होती है।''[16]

संदर्भ :

1. वैचारिकी, (सं.) मणिका मोहिनी, पृ. 141.
2. गिरिराज किषोर के उपन्यासों का समाजषास्त्र, डॉ. सुबोध मंडल, पृ. 19.
3. अपने आस–पास, सं. बलराम, पृ. 32.
4. कथाकार गिरिराज किषोर, डॉ. सुरेष सदावर्ते, पृ. 21.
5. अपने आस–पास, सं. बलराम, पृ. 45.
6. आन्द्र की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किषोर, पृ. 8.
7. वही, पृ. 9–10.
8. अपने आस–पास, सं. बलराम, पृ. 45.
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 383.
10. अठारह उपन्यास, राजेन्द्र यादव, पृ. 151.
11. हिंदी उपन्यास, बदलते परिप्रेक्ष्य, डॉ. सुदेष बत्रा, पृ. 149.
12. यह देह किसकी है, गिरिराज किषोर, पृ. पाँच–छह।
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास, विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 382.
14. समकालीन हिन्दी उपन्यास, संवेदना और सरोकार, पृ. 62.
15. वल्द रोजी, गिरिराज किषोर, प्रथम फ्लैप।
16. वागर्थ, जून 1997, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 13

–षोध–छात्र, स्नातकोत्तर हिन्दी

ति.मा. भागलपुर विष्वविद्यालय, भागलपुर

—